

अजय बोकिंग

आजकल 'वेबीनार विशेषज्ञों' की एक ऐसी संकर नस्ल भी तैयार हो गई है जो बिना थके, बिना रुके दिन में पांच-दस वेबीनार निपटा सकती है। आप 'कोरोना' से बच सकते हैं, लेकिन वेबीनार से नहीं। 'वेबीनार शिकारी' मानो दूढ़ते ही रहते हैं कि कौन बंदा कहाँ खाली है और कब उसे ऑनलाइन बुक कर दिया जाए। आजकल 'वेबीनार विशेषज्ञों' की एक ऐसी संकर नस्ल भी तैयार हो गई है जो बिना थके, बिना रुके दिन में पांच-दस वेबीनार निपटा सकती है। कई लोगों के लिए यह नई आभासी तकनीक अपने 'एक्टिविटी अकाउंट' में नंबर बढ़वाने का सबसे आसान उपाय है। एक्युअल दुनिया में जीने के आदी रहे कई लोगों का मानना है कोविड 19 के समान यह एक नई सामाजिक और तकनीकी बीमारी है, जिससे छुटकारा पाना लगभग नामुमकिन है। क्योंकि इसने इंसानों के बीच दूरियों को अपने ढंग से पाटने और पुरानी नजदीकियों को स्थायी दूरियों में तब्दील करने का काम किया है।

वैसे वेबीनार की दुनिया के धुरंधरों का मानना है कि कोरोना रहे न रहे, 'वेबीनार संस्कृति' का ये वायरस हमारी जिंदगी में घुस चुका है। इसकी कोई वैकसीन बनने की संभावना भी नहीं है। दरअसल कोरोना काल ने हमारे शब्दकोश को जो नए शब्द दिए हैं, उनमें से एक वेबीनार भी है। कुछ समय पहले तक 'सेमीनार', 'सम्मेलन' या 'परिचर्चा' जैसे शब्दों, उनकी तासीर और

है। अपने देश में वेबीनार कल्चर भले अभी फलता दिख रहा हो, लेकिन दुनिया में यह कनसेप्ट काफी पहले आ गया था। वास्तव में वेबीनार शब्द भी अंग्रेजी के 'वेब' और 'इनार' शब्दों से मिलकर बना है। डिक्शनरी में



'वेबीनार कल्चर'

बदलते समाज की सच्चाई

अपने देश में वेबीनार कल्चर भले अभी फलता दिख रहा हो, लेकिन दुनिया में यह कनसेप्ट काफी पहले आ गया था। वास्तव में वेबीनार शब्द भी अंग्रेजी के 'वेब' और 'इनार' शब्दों से मिलकर बना है। डिक्शनरी में इसे पहली बार जगह 2008 में मिली। इसे वेब कांफ्रेंसिंग भी कहते हैं। ऑनलाइन बैठकों, सम्मेलनों के आयोजन और प्रसारण की इस विधा को वेबकास्ट कहा जाता है। यह काम इंटरनेट और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के जरिए होता है। इसमें संबंधित लिंक के माध्यम से आप अपने घर या दफ्तर से ही सीधे जुड़ सकते हैं। अपनी बात रख सकते हैं, चर्चा में भाग ले सकते हैं।



इंटरनेट के जरिए होने वाली इन बैठकों को 'नेट मीटिंग' कहा जाता था। इसकी शुरुआत माइक्रोसॉफ्ट कंपनी ने की। अगले ही साल जॉर्ज्स पार्क कंपनी ने वर्चुअल प्लेसवेयर ऑडिओरियम की स्थापना की, जिसमें ऑनलाइन मल्टीमीडिया प्रेजेंटेशन दिया जा सकता था। ऑडियो कन्वर्सेशन भी हो सकता था। 1998 में सबसे पहले 'वेबीनार' शब्द रजिस्टर्ड हुआ। लेकिन यह मामला कोर्ट में गया और अब इंटरनेट कंपनी के ट्रेडमार्क के रूप में यह शब्द रजिस्टर्ड है। 1999 में पहला वेबकास्ट मीटिंग सेंटर जारी किया गया।

जिसके माध्यम से हजार लोगों को ऑनलाइन मीटिंग की जा सकती थी। इस बीच धीरे-धीरे वेबीनार की लोकप्रियता बढ़ने लगी थी। क्योंकि यह मामूली खर्च में लगने वाली ऐसी चौपाल थी, जिसमें व्यक्ति दुनिया के किसी भी कोने से बिना कहीं जाए, इसमें भाग ले सकता

है। इसका उपयोग तत्काल संदेश भेजने के लिए किया जाता था। 1995 में पिक्चरटेल कंपनी ने विडॉज पर आधारित सॉफ्टवेयर 'लाइवशोर प्लस' लांच किया। इसमें रिमोट कंट्रोल से शेरिंग की सुविधा थी।

उनकी आड़ में पनप रहे तंत्र से हम वाकिफ थे। कोरोना की वजह से देश भर में लोकडाउन हुआ और भौतिक-सामाजिक गतिविधियां भी ठप हो गईं। ऐसे में लोगों के सामने सवाल खड़ा हो गया कि क्या करें? अपना वजूद बताने और बचाने के लिए कुछ तो करना होगा। लिहाजा 'ऑनलाइन वेबीनार' का कनसेप्ट तेजी से फैलने लगा।

पढ़ाने लिखाने, मार्केटिंग, कई जरूरी और गैर जरूरी विषयों तथा आत्मप्रचार के लिए वेबीनारों की बाढ़-सी आ गई। बीते 6 माह में देश में कुल कितने वेबीनार हुए या हो रहे हैं, इसका कोई आंकड़ा तो उपलब्ध नहीं है, लेकिन माना जा सकता है कि सामाजिक कार्यक्रमों और लोगों के जमावड़ों के दम पर अपनी दुकान चलाने वालों के लिए तो यह मानो घर चल कर आया 'सुनहरा' अवसर

इसे पहली बार जगह 2008 में मिली। इसे वेब कांफ्रेंसिंग भी कहते हैं। ऑनलाइन बैठकों, सम्मेलनों के आयोजन और प्रसारण की इस विधा को वेबकास्ट कहा जाता है। यह काम इंटरनेट और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के जरिए होता है। इसमें संबंधित लिंक के माध्यम से आप अपने घर या दफ्तर से ही सीधे जुड़ सकते हैं। अपनी बात रख सकते हैं, चर्चा में भाग ले सकते हैं।

इसके लिए जरूरी है, स्मार्ट फोन, लैपटॉप या कम्प्यूटर। इस ऑनलाइन संचार के लिए कई सॉफ्टवेयर भी उपलब्ध हैं। वेबीनार कई उद्देश्यों, जैसे स्लाइड शो, वेब टूर, टैक्सट चैट, मार्केटिंग, ऑफिनयन पोल और सर्वेक्षण आदि के लिए किया जाता है। इसके कुछ मापदंड भी बनाए गए हैं।

दुनिया में इसकी शुरुआत 'रियल टाइम टैक्सट चैट



सभ्य समाज बनाता है सभ्य पुलिस

विभूति नारायण राय

अंग्रेजी की एक कहावत के अनुसार, पुलिस किसी आवश्यक बुराई की तरह है। वे भी, जो हमेशा पुलिस के विरोध में खड़े दिखते हैं, किसी ऐसी स्थिति की कल्पना नहीं कर पाते, जिसमें पुलिस सड़कों से पूरी तरह से अनुपस्थित हो

सार्वजनिक जगहों पर न थूकने जैसे कर्तव्यों की याद दिलाने के लिए भी पुलिस की जरूरत पड़ती है।

सभ्यता की निचली सीढ़ी पर खड़े व्यक्ति के लिए पर्यावरण, अपना स्वास्थ्य या दूसरों की सुविधा/असुविधा का कोई अर्थ नहीं है। इस सच्चाई पर हमारा ध्यान नहीं जा पा रहा है कि किसी समाज की आंतरिक संरचना ही उसे एक निश्चित अर्थ में कानून-कायदों का पालन करने

स्थिति उन अंतर्विरोधों की उपज है, जो एक लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य बनने की प्रक्रिया में हमारे यहां अक्सर दिखते रहते हैं। सड़क पर पैदल चलने वाले को मिलने वाली जगह भी सभ्यता को मापने का पैमाना हो सकता है। अपनी पहली विलायत यात्रा का सबसे विलक्षण अनुभव मेरे लिए सड़क पर चलने वाले के लिए चालकों द्वारा अपने वाहन रोक देना देखा था।

यह सिखाने के लिए दूर-दूर तक कहीं पुलिस नहीं दिखती थी, लोग आंतरिक अनुशासन से यह कर रहे थे। मेरे जैसे भारतवासी के लिए, जिसके अनुभव संसार में पैदल चलने वाला सड़क के उपभोग का सबसे आखिरी अधिकारी होता है, यह एक अकल्पनीय स्थिति थी। सभ्य होने का एक पैमाना यह भी है कि कोई समाज अपने बीच के कमजोरों के लिए कितना स्थान छोड़ता है। उसमें रहने वाले बच्चे, स्त्रियां,

दिव्यांग या आर्थिक रूप से पिछड़ गए समूह शक्तिशाली लोगों के बरअक्स कहाँ खड़े होते हैं। मैंने पैदल चलने वालों का जो जिक्र किया है, वह एक ऐसे ही असुरक्षित समुदाय का उदाहरण है। भारत में यह अनायास नहीं है कि सड़कों पर टूक, कार और दूसरे वाहनों की आतंककारी उपस्थिति के बाद ही पैदल के लिए जगह बचती है।

ऐसा नहीं है कि समाज को कानून का सम्मान कराने वाला बनाने के लिए पुलिस की कोई भूमिका नहीं होती। पर यह भूमिका एक सभ्य पुलिस ही निभा सकती है और सभ्य पुलिस का निर्माण एक सभ्य समाज करता है। यदि एक समाज के तौर पर हम पुलिस द्वारा अपराधियों को 'एनकाउंटर' में मार गिराने पर प्रसन्न होते हैं, तो फिर हमें स्वीकार करना होगा कि अभी हम सभ्यता के सोपान पर बहुत निचले पायदान पर खड़े हैं, हम एक सभ्य पुलिस नहीं निर्मित कर सकते। सब कुछ एक-दूसरे में गुंथा हुआ है। अपराध और दंड के मसले भी मनुष्यता के विकास से जुड़े हैं। जरूरी है कि हम वे सारे मूल्यगत परिवर्तन करें, जो हमें सभ्य समाज बनने के लिए जरूरी सोपान पर ऊपर चढ़ा सके। पर क्या इसके लिए हम तैयार हैं?



वाला बनाती है। पुलिस का डंडा या सख्त कानून उसे स्वीच्छक सभ्य नहीं बनाते। अंदर से इच्छाशक्ति न हो, तो थोपी हुई सभ्यता स्थायी नहीं होती।

वैसे भी, भारत दुनिया के चुनिंदा देशों में है, जहां शायद सबसे अधिक कानून होंगे, लेकिन हम कितना कानून-पालन करने वाले समाज हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। यह

दरअसल 'ओटीटी प्लेटफॉर्म पर प्रदर्शित होने वाली फिल्मों से स्टार की कीमत तय नहीं होती। वेब सीरीज या ओटीटी पर रिलीज होने की वजह से उनकी स्टार वैल्यू कम नहीं होती। वैसे संभावना है कि अगले साल की शुरुआत में फरवरी-मार्च तक थियेटरों में वापस रौनक लौटने लगेगी। फिलहाल कबीर खान की स्पोर्ट्स ड्रामा 83 और रोहित शेट्टी की पुलिस ड्रामा सूर्यवंशी ऐसी फिल्में हैं, जो ओटीटी पर रिलीज होने के दबाव से बची हुई हैं।

सर्वदमन पाठक

कोविड 19 की वजह से सिनेमाघर वीरान हुए और लोकडाउन से लोग घरों में कैद हुए तो सिनेमाघरों में फिल्मों की रिलीज पर भी वज्रपात हो गया। सरकार के दावे और वायदे शुरुआती रूप से यही संकेत दे रहे थे कि कोरोना चंद महीनों का मेहमान है और उसके बाद सभी कुछ सामान्य हो जाएगा लेकिन धीरे धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि कोरोना के साथ ही हमें जीना पड़ेगा। तब यह तय हो गया कि थियेटर में कम से कम इस साल तो फिल्मों की रिलीज संभव नहीं होगी। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि भले ही पिछले महीने से देश के कई राज्यों में 50 प्रतिशत क्षमता या ऑक्ज्यूपेंसी के साथ थियेटर खुल गए हों, लेकिन वे कमोवेश खाली ही हैं। अब फिल्म निर्माताओं ने फिलहाल अपना नया रास्ता निकाल लिया है। वे अपनी तैयार



फिल्मों को ओटीटी प्लेटफॉर्म पर बेरोकटोक रिलीज कर रहे हैं। इसका प्रमाण है कि इस साल कई बड़ी फिल्में ओटीटी प्लेटफॉर्म यानी नेटफ्लिक्स, अमेजन, हॉट स्टार, जी 5, सोनी लिव आदि पर रिलीज हो चुकी हैं। ऑकड़ों की ही बात करें तो अमिताभ बच्चन और आयुष्मान खुराना की फिल्म गुलाबो-सिताबो को लगभग पांच करोड़ व्यूज मिल चुके हैं। अक्षय कुमार की हाल में आई फिल्म लक्ष्मी की आलोककों ने नकार दिया है लेकिन दर्शकों की दृष्टि से यह आकलन कतई सही नहीं है।

फिल्मों का नया प्लेटफॉर्म ओटीटी



फिल्मों ओटीटी प्लेटफॉर्म पर रिलीज हो गईं। इसकी वजह से निर्माताओं को नुकसान नहीं हुआ लेकिन उनकी कमाई जरूर घट गई। अगर फिल्म थियेटर में हिट हो जाती और चार से छह हफ्ते बाद ओटीटी पर आती, तो उनकी कमाई लगभग तीन गुना बढ़ जाती, लेकिन हॉलीवुड का खेल अलग है। वहां फिल्मों का बजट हमसे चार से बीस गुना अधिक होता है। सिर्फ अमेरिकी बाजार से उन्हें 30 से 40 प्रतिशत की ही कमाई होती है। उनकी असली कमाई चीन, जापान, यूरोप, मध्य-पूर्व और भारत से होती है। कोविड काल में वहां थियेटर में बस एक ही बड़ी फिल्म रिलीज हो पाई टैनेट, उसकी भी कमाई मात्र 350 मिलियन डॉलर में सिमटकर रह गई। हॉलीवुड की बड़ी फिल्में अपने बजट की वजह से ओटीटी पर रिलीज नहीं हो पा रही हैं। वेब सीरीज माध्यम शहरी युवाओं में एक दो साल से लोकप्रिय था, लेकिन लोकडाउन, घर पर रहने की विवशता, चर्क फ्रॉम होम आदि की वजह से अचानक इस उद्योग को पंख लग गए हैं। बाँबी देओल, सुभिता सेन, चंद्रचूड़ सिंह, अभय देओल, अभिषेक बच्चन जैसे कलाकारों को काफी अरसे बाद वेब सीरीज की वजह से अवसर मिलने लगे हैं। अब तो सैफ अली खान तथा शाहरुख खान भी वेब सीरीज में काम करने को राजी हो गए हैं। ओटीटी सीरीज में विविधता की वजह से मेट्रो से आगे निकलकर छोटे शहरों और कस्बों के दर्शकों तक इनकी पहुंच बढ़ गई है। क्या वेब सीरीज की वजह से हमारे मनोरंजन को देखने का नजरिया बदलेगा?